छायावादोत्तर कविता के कवि : गोपाल सिंह नेपाली

डॉ. मुन्ना साह
असिस्टेंट प्रोफेसर
मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय (एनसीवेब), दिल्ली विश्वविद्यालय

मस्ती, उमंग, प्रेम और सहज सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही नेपाली के काव्य की विशेषता रही है। अपनी सहजता और स्वाभिमान के कारण वे अपने समकालीन कवियों से अलग प्रतीत होते हैं। वे मूलतः प्रेम के कवि हैं और प्रेम की हर भंगिमा को उन्होंने स्वर दिया है। नेपाली प्रकृति के सम्पूर्ण कवि हैं और अभिन्न भी। उन्होंने फिल्मी गीतों को भी पूरी साहित्यिकता के साथ संस्कार किया है और जन अनुभूतियों से संबद्ध भी। 'उमंग' (1934), 'पंछी' (1934), 'रागिनी' (1935), 'नीलिमा' (1939), 'पंचमी' (1942), 'नवीन' (1944), 'हिमालय ने पुकारा' (1963) उनकी काव्य–कृत्तियां हैं।

कवि की समाज, राष्ट्र, संस्कृति आर मनुष्यता के लिए क्या भूमिका होती है इसे नेपाली ने इस तेवर में कहा –

'हर क्रांति कलम से शुरू हुई संपूर्ण हुई
चट्टान जुल्म की कलम चली तो पूर्ण हुई
हम कलम चलाकर त्रास बदलने वाले हैं
हम तो कवि हैं इतिहास बदलने वाले हैं
हम धरती क्या आकाश बदलने वाले हैं।'[1]

गोपाल सिंह नेपाली का जन्म बिहार के बेतिया जिले में 1911 की जन्माष्टमी के दिन 11 अगस्त को हुआ था। उनके पिता रामबहादुर सिंह फौज में एक सैनिक थे। पिता ने जन्माष्टमी के दिन जन्म लेने के कारण गोपाल नाम रख दिया। नेपाली परिवार का होने के कारण वह गोपाल सिंह नपाली कहलाए। जब वह महज इक्कीस साल के थे तो 1932 में प्रयाग में द्विवेदी मेला लगा था और उस अवसर पर सौ कवियों में मात्र 15 कवि काव्य–पाठ के लिए चयनित हुए थे। जब नेपाली जी का काव्य–पाठ हुआ तो सबके सब मंत्र–मुग्ध हो उठे। उपन्यास–सम्राट प्रेमचंद ने अनायास कहा – 'क्या कविता पेट से ही सीखकर आए हो। ऐसी नैसर्गिक एवं विलक्षण काव्य–प्रतिभा के धनी थे नेपाली।

प्रेमचंद की भांति उनकी दृष्टि भी मात्र राजनीतिक स्वाधीनता–प्राप्ति पर केंद्रित न थी, उनकी चेतना के केंद्र में न केवल किसान–मजदूर थे बल्कि उनकी दृष्टि भारतीय समाज को छिन्न–भिन्न करने वाली – उसे रक्त–रंजित कर निर्बल करने वाली वर्ण–व्यवस्था और सांप्रदायिकता को भी भली–भांति देख समझ रही थी। स्वाधीनता–संग्राम के दौरान वास्तविक परिस्थितियों के प्रति उनका यह वस्तुपरक दृष्टिकोण और उसकी अभिव्यक्ति में सतत् नैरंतर्य उन्हें समकालोनों से एक पृथक छवि प्रदान करता है। उमंग की 'चित्र' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ –

''लटक रहा है सुख कितनों का आज खेत के गन्नों में
भूखों के भगवान खड़े हैं दो–दो मुट्ठी अन्नों में
कर जोड़े अपने घरवाले हमसे भिक्षा मांग रहे

किंतु देखते उनकी किस्मत हम पोथी के पन्नों में''[2]

प्रकृति के सहज सौन्दर्य को नेपाली कितनी सजीव अभिव्यक्ति देते हैं –

''"पीपल के पत्ते गोल–गोल
कुछ कहते–रहते डोल–डोल
जब–जब आता पंछी तरू पर जब–जब
जाता पंछी उड़कर
जब–जब खाता फल चुन चुनकर
पड़ती जब पावस की फुहार बजते जब पंछी के सितार
बहने लगती शीतल बयार"[3]

नेपाली का रूप सौंदर्य भी अनुपम है। सौंदर्य की हर भंगिमा को वे अपनी रचनाओं में जीवन्त कर देते हैं –

"सौंदर्य तुम्हारा सूर्योदय, संध्या हो आधी रात हो
दर्शन से खिलता मुग्ध हृदय जैसे कोई जलजात हो।
मुखड़ा दीपक की ज्योति–कली
मुस्कान अंधेरे की बिजली
मधुहार तुम्हारा सूर्योदय, बदली हो या बरसात हो
सौंदर्य तुम्हारा सूर्योदय, संध्या हो आधी रात हो।"[4]

'देख रहे हैं महल तमाशा' में कवि की प्रगतिशील इतिहास–दृष्टि स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है–

जो जीवन अपमानित ही है। उसका भी क्या मोह करोगे?
रौंदे–कुचले आज जा रहे। फिर कब तुम विद्रोह करोगे?

अंततः अनंत संघर्षों और बलिदानों के बाद देश स्वतंत्र हो गया। देश विकास की दिशा में अग्रसर भी हो गया। लेकिन स्वाधीनता के साथ जुड़े करोड़ों वंचितों के सपने साकार न हो सके। धनी धनी होते चले गए, गरीब और गरीब। क्रांतिकारियों की कुर्बानियां व्यर्थ होती चली गईं। ''सच्चे जनपक्षधर कवि का, मोह–भंग हुआ और उसने लोकतंत्र की वास्तविकता से साक्षात्कार करते हुए 'रोटियों का चंद्रमा' शीर्षक कविता में लिखा है –

''दिन गए, बरस गए, यातना गई नहीं
रोटियां गरीब की प्रार्थना बनी रहीं।
एक ही तो प्रश्न है रोटियों की पीर का
पर उसे भी आसरा आंसुओं के नीर का
राज है गरीब का, ताज दानवीर का
तख्त भी उलट गया, याचना गई नहीं
रोटियां गरीब की प्रार्थना बनी रहीं!''[5]

कवि की राजनीतिक दृष्टि ने 1956 में ही पाकिस्तान के प्रति भारत सरकार को सचेत और सावधान करते हुए लिखा था –

ओ राही, दिल्ली जाना तो कहना अपनी सरकार से
चर्खा चलता है हाथों से, शासन चलता तलवार से!

गोपाल सिंह नेपाली 'वन मैन आर्मी' के रूप में जनता के बीच पहुंचकर उसे चीनियों के विरुद्ध सीना तानकर खड़ा होने का आह्वान कर रहे थे। 'हिमालय ने पुकारा' जैसी अग्नि–कृति का सृजन करते हुए वे चीन की सेना को ललकार भी रहे थे और देश को सावधान करते हुए एकजुट होकर युद्ध के मैदान में डट कर मुकाबला करने का साहस भी कर रहे थे –

''"हो जाए पराधीन नहीं गंगा की धारा
गंगा के किनारों को शिवालय ने पुकारा
अम्बर के तले हिन्द की दीवार हिमालय
सदियों से रहा शांति की मीनार हिमालय
अब मांग रहा हिन्द से तलवार हिमालय
भारत की तरफ चीन ने है पांव पसारा
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा।"''[6]

इस संग्रह की तमाम कविताएं जागृति की झंकार से भरी हुई राष्ट्रीय स्वाभिमान को सजग करने

वाली हैं। 17 अप्रैल 1963 को इसी अभियान के क्रम में भागलपुर स्टेशन पर हृदय गति रुक जाने से नेपाली जी का निधन हो गया। नेपाली नारी–पुरुष की समानता के समर्थक थे। वे नारी–शक्ति को स्वतंत्र सत्ता मानते रहे। राष्टोय–संकट की घड़ी में बहन–भाई, नारी–पुरुष अर्थात् शक्ति और संयोजन का अद्भुत बल द्रष्टव्य है –

''तू चिनगारी बनकर उड़ री,
जाग–जाग मैं ज्वाला बनूं।
तू बन जा हहराती गंगा,
मैं झेलम बेहाल बनूं।

'बाबुल तुम बगिया के तरुवर' गीत में स्त्री के जीवन से लेकर मरण तक हर मर्म का वर्णन नेपाली ने जितनी बखूबी से किया है वह अद्भुत है –

'बाबुल तुम बगिया के तरुवर
हम तरुवर की चिड़िया रे
दाना चुगते उड़ जाएं हम
पिया–मिलन की घड़ियां रे'

एक ईमानदार कवि के रूप में नेपाली सच कहने से कभी कतराये नहीं। वे निर्भीकता के साथ लिखते हैं –

तुझ–सा लहरों में बह लेता
तो मैं भी सत्ता गह लेता
ईमान बेचता चलता तो
मैं भी महलों में रह लेता
हर दिल पर झुकती चली मगर, आंसू वाली नमकीन कलम
मेरा धन है स्वाधीन कलम''[7]

इससे स्पष्ट होता है कि नेपाली ने कभी भी अपने स्वाभिमान के साथ समझौता नहीं किया और वे कभी किसी के अधीन रहना भी स्वीकार नहीं किया। 1944 में मुंबई में कवि–सम्मेलन में उनके काव्य–पाठ की ऐसी धूम मची कि फिल्मिस्तान के निर्माता ने उनके सामने फिल्मों में गीत लिखने का प्रस्ताव रखा, जिसे कवि ने स्वीकार कर लिया। उस वक्त फिल्म जगत में उर्दू के गीतकारों का ही बोलबाला था और हिंदी की घोर उपेक्षा हो रही थी। तब नेपाली जी ने हिंदी गीतों के माध्यम से फिल्म–जगत में हिंदी को प्रतिष्ठित किया।

नेपाली के फिल्मी गीत

फिल्म–इनाम, संगीतकार–एस.एन. त्रिपाठी

''जरा ठहरो मैं हाले दिल सुना लूँ, फिर चले जाना
तमन्नाआ को अश्कों में बसा लूँ, फिर चले जाना
जरा ठहरो....
अरे ओ जाने वाले, एक ही पल के लिए रुक जा
मैं शमए–जिन्दगी अपनी बुझा लूँ, फिर चले जाना
कयामत की घड़ी है, आज तो जी भरके रोने दो
मैं तुमको हार अश्कों के पहना दूँ, फिर चले जाना
जरा ठहरो....
तेरे जाते ही साजे–जिन्दगानी टूट जाएगा
मैं अपना आखिरी नगमा सुना लूँ, फिर चले जाना
जरा ठहरो मैं हाले दिल सुना लूँ, फिर चले जाना
जरा ठहरो....''[8]

फिल्म–गजरे, संगीतकार–अनिल विश्वास

''जलने के सिवा और क्या है यहाँ
चाहे दिल हो किसी का
या हो जिया या हो जिया
जलने के सिवा और क्या है यहाँ....
हर रात दिया जल–जल के बुझे
दिल रोज पुकारे पिया–पिया
जलने के सिवा और क्या है यहाँ....
बचपन से तुमसे प्रीत रही
जब पास थे तुम तो प्यार किया
जब पास थे तुम तो प्यार किया
अब दूर हुए तो तरसे जिया

जलने के सिवा और क्या है यहाँ....
है रन घिरी पर चैन नहीं
ये मन है कहीं और नैन कहीं
जब तुमसे बिछड़ गए हमने
फागुन में मचलना छोड़ दिया
फागुन में मचलना छोड़ दिया
जलने के सिवा और क्या है यहाँ....''[9]

गोपाल सिंह नेपाली के संदर्भ में केदारनाथ सिंह लिखते हैं कि– ''गोपाल सिंह नेपाली का नाम पहली बार मैंने तब सुना, जब मैं सातवीं–आठवीं का विद्यार्थी था। उन दिनों बनारस के माहौल में उनका नाम गूँज रहा था–क्योंकि कुछ ही समय पूर्व वे बनारस के एक कवि–सम्मेलन में आए थे और वहाँ के पूरे साहित्यिक माहौल पर छा गए थे। अगर भूलता नहीं तो उनकी पहली चचा मैंने त्रिलोचन शास्त्री से सुनी थी। लेकिन मैं उन्हें सुन नहीं सका था, इसका अफसोस जरूर रहा। उनका एक गीत उन दिनों बहुत चर्चित हुआ था, जिसकी पहली पंक्ति मुझे याद है– **'तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो।'** यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ था कि उस समय बनारस के अनेक जाने–माने गीतकारों का प्रिय गीत बन गया था। जिनका प्रिय गीत बन गया था, उनमें नामवर जी भी थे।''[10] जब केदारनाथ जी को पूरा गीत सुनने को मिला तो उन्हें नेपाली की कल्पना 'छायावादियों से 'नवीन कल्पना' लगी और उसमें समाज को बदलने की आकांक्षा निहित थी।

इसी प्रकार एक फिल्म के सेट पर प्रख्यात अभिनेत्री नसीम बानो ने नेपाली जी की कविताएं सुनीं तो उन्होंने कहा –'मैं तो समझती थी कि उर्दू ही सबसे मीठी जुबान है मगर आज पता चला हिंदी से अधिक मीठी जुबान कोई नहीं है।' 'सफर', 'शिकार', 'बेगम', 'लीला', 'गजरे', 'शिवभक्त', 'तुलसीदास', 'शिवरात्रि', 'जयश्री', 'राजकन्या', 'गौरी पूजा', 'नागपंचमी', 'मजदूर', 'जयभवानी' आदि लगभग 56 फिल्मों में 300 से अधिक गीत लिखने वाले इस कवि ने फिल्म–जगत में भी कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने फिल्म जगत मे हिंदी की स्थिति पर लिखा है –'उर्दू की यह अच्छाई मानते हुए भी, ज्यादा गंभीर भाव देने में और मिठास को करोड़ों के चाहने लायक बनाने की शक्ति रखने में मैं हिंदी को हिंदुस्तान की समस्त भाषाओं में श्रेष्ठ मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि यही विचार उर्दू के गीतकारों की अंतरात्मा भी मानती होगी।' छायावादोत्तर कविता और कवि की बात करें तो उसने छायावाद को 'यथार्थ के तिरस्कार' और 'स्वप्नदर्शी उड़ान' के रूप में ग्रहण किया एवं उनमें औपनिवेशिक दासता से मुक्ति की चिंता थी। संभावित स्वाधीनता की संकल्पना भी गोपालसिंह नेपाली की कविता 'हिमालय ने पुकारा' में दृष्टिगत होती है, जो छायावादोत्तर कविता का केन्द्रीय भाव है।

संदर्भ

1. उमंग – गोपाल सिंह नेपाली, पृ. 107–108
2. गोपाल सिंह नेपाली – डॉ० सतीश कुमार राय, किताब पब्लिकेशन, मुज०, संस्करण : 2008, पृ. 107
3. परम्परा के कीर्तिस्तम्भ – डॉ० सतीश कुमार राय, किताब पब्लिकेशन, संस्करण : 2009 पृ. 133–134
4. वही, पृ. 134
5. आजकल, जून–2009 (संपादक – सीमा ओझा), पृ. 6
6. वही. पृ. 9
7. दैनिक जागरण, 11 अगस्त 2009 (मुजफ्फरपुर), पृ. 14
8. परम्परा के कीर्तिस्तम्भ – डॉ० सतीश कुमार राय, पृ. 141–142
9. वही, पृ. 142
10. अलाव, अंक–31, मार्च–अप्रैल : 2012, संपादक : रामकुमार कृषक, पृ. 170ण